अमरकांत

(सन् 1925)

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के नगर गाँव में हुआ। उनका मूल नाम श्रीराम वर्मा है, उनकी आरंभिक शिक्षा बलिया में हुई। तत्पश्चात् उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। साहित्य-सृजन में उनकी बचपन से ही रुचि थी, किशोरावस्था तक आते-आते उन्होंने कहानी-लेखन प्रारंभ कर दिया था।

अमरकांत ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत पत्रकारिता से की। सबसे पहले उन्होंने आगरा से प्रकाशित होनेवाले दैनिक पत्र ***सैनिक*** *के संपादकीय विभाग में कार्य करना आरंभ किया और यहीं वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े। इसके अतिरिक्त उन्होंने* ***दैनिक अमृत पत्रिका*** *तथा* ***दैनिक भारत*** *के संपादकीय विभागों में भी काम किया। कुछ समय तक वे* ***कहानी*** *पत्रिका के संपादन से भी जुड़े रहे।*

अमरकांत नयी कहानी आंदोलन के एक प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में शहरी और ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। वे मुख्यत: मध्यवर्ग के जीवन की वास्तविकता और विसंगतियों को व्यक्त करनेवाले कहानीकार हैं। वर्तमान समाज में व्याप्त अमानवीयता, हृदयहीनता, पाखंड, आडंबर आदि को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। आज के सामाजिक जीवन और उसके अनुभवों को अमरकांत ने यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी शैली की सहजता और भाषा की सजीवता पाठकों को आकर्षित करती है। आंचलिक मुहावरों और शब्दों के प्रयोग से उनकी कहानियों में जीवंतता आती है। अमरकांत की कहानियों के शिल्प में पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयास नहीं है। वे जीवन की कथा उसी ढंग से कहते हैं, जिस ढंग से जीवन चलता है।

अमरकांत की मुख्य रचनाएँ हैं – ***ज़िंदगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र-मिलन, कुहासा*** *(कहानी संग्रह);* ***सूखा पत्ता, ग्राम सेविका, काले उजले दिन, सुखजीवी, बीच की दीवार, इन्हीं हथियारों से*** *(उपन्यास)। अमरकांत ने बाल-साहित्य भी लिखा है। इस पुस्तक के लिए उनकी कहानी* ***दोपहर का भोजन*** *ली गई है।*

दोपहर का भोजन *गरीबी से जूझ रहे एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। इस कहानी में समाज में व्याप्त गरीबी को चिह्नित किया गया है। मुंशीजी के पूरे परिवार का संघर्ष भावी उम्मीदों पर टिका हुआ है। सिद्धेश्वरी गरीबी के अहसास को मुखर नहीं होने देती और उसकी आँच से अपने परिवार को बचाए रखती है। शिल्प की सादगी और सहज संकेतों के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करने की कला का उत्कृष्ट रूप इस कहानी में देखने को मिलता है।*

दोपहर का भोजन

सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की उँगलियाँ या ज़मीन पर चलते चींटे-चींटियों को देखने लगी। अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है। वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा-भर पानी लेकर गट-गट चढ़ा गई। खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह 'हाय राम!' कहकर वहीं ज़मीन पर लेट गई।

लगभग आधे घंटे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गई, आँखों को मल-मलकर इधर-उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अध-टूटे खटोले पर सोये अपने छः वर्षीय लड़के प्रमोद पर जम गई। लड़का नंग-धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ़ दिखाई देती थीं। उसके हाथ-पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हँडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला हुआ था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं।

वह उठी, बच्चे के मुँह पर अपना एक फटा, गंदा ब्लाउज़ डाल दिया और एक-आध मिनट सुन्न खड़ी रहने के बाद बाहर दरवाज़े पर जाकर किवाड़ की आड़ से गली निहारने लगी। बारह बज चुके थे। धूप अत्यंत तेज़ थी और कभी-कभी एक-दो व्यक्ति सिर पर तौलिया या गमछा रखे हुए या मज़बूती से छाता ताने हुए फुर्ती के साथ लपकते हुए सामने से गुज़र जाते।

दस-पंद्रह मिनट तक वह उसी तरह खड़ी रही, फिर उसके चेहरे पर व्यग्रता फैल गई और उसने आसमान तथा कड़ी धूप की ओर चिंता से देखा। एक-दो क्षण बाद जब उसने सिर को किवाड़ से काफ़ी आगे बढ़कर गली के छोर की तरफ़ निहारा, तो उसका बड़ा लड़का रामचंद्र धीरे-धीरे घर की ओर सरकता नज़र आया।

उसने फुर्ती से एक लोटा पानी ओसारे की चौकी के पास नीचे रख दिया और चौके में जाकर खाने के स्थान को जल्दी-जल्दी पानी से लीपने-पोतने लगी। वहाँ पीढ़ा रखकर उसने सिर को दरवाज़े की ओर घुमाया ही था कि रामचंद्र ने अंदर कदम रखा।

रामचंद्र आकर धम-से चौकी पर बैठ गया और फिर वहीं बेजान-सा लेट गया। उसका मुँह लाल तथा चढ़ा हुआ था। उसके बाल अस्त-व्यस्त थे और उसके

फटे-पुराने जूतों पर गर्द जमी हुई थी।

सिद्धेश्वरी की पहले हिम्मत नहीं हुई कि उसके पास जाए और वह वहीं से भयभीत हिरनी की भाँति सिर उचका-घुमाकर बेटे को व्यग्रता से निहारती रही। किंतु लगभग दस मिनट बीतने के पश्चात् भी जब रामचंद्र नहीं उठा, तो वह घबरा गई। पास जाकर पुकारा, 'बड़कू, बड़कू!' लेकिन उसके कुछ उत्तर न देने पर डर गई और लड़के की नाक के पास हाथ रख दिया। साँस ठीक से चल रही थी। फिर सिर पर हाथ रखकर देखा, बुखार नहीं था। हाथ के स्पर्श से रामचंद्र ने आँखें खोलीं। पहले उसने माँ की ओर सुस्त नज़रों से देखा, फिर झट से उठ बैठा। जूते निकालने और नीचे रखे लोटे के जल से हाथ-पैर धोने के बाद वह यंत्र की तरह चौकी पर आकर बैठ गया।

सिद्धेश्वरी ने डरते-डरते पूछा, 'खाना तैयार है, यहीं लाऊँ क्या?'

रामचंद्र ने उठते हुए प्रश्न किया, 'बाबू जी खा चुके?'

सिद्धेश्वरी ने चौके की ओर भागते हुए उत्तर दिया, 'आते ही होंगे।'

रामचंद्र पीढ़े पर बैठ गया। उसकी उम्र लगभग इक्कीस वर्ष थी। लंबा, दुबला-पतला, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें तथा होंठों पर झुर्रियाँ। वह एक स्थानीय दैनिक समाचार-पत्र के दफ़्तर में अपनी तबीयत से प्रूफ़-रीडरी का काम सीखता था। पिछले साल ही उसने इंटर पास किया था।

सिद्धेश्वरी ने खाने की थाली लाकर सामने रख दी और पास ही बैठकर पंखा करने लगी। रामचंद्र ने खाने की ओर दार्शनिक की भाँति देखा। कुल दो रोटियाँ, भर कटोरा पनियाई दाल और चने की तली तरकारी।

रामचंद्र ने रोटी के प्रथम टुकड़े को निगलते हुए पूछा, 'मोहन कहाँ है? बड़ी कड़ी धूप हो रही है।'

मोहन सिद्धेश्वरी का मँझला लड़का था। उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष थी और वह इस साल हाई स्कूल का प्राइवेट इम्तिहान देने की तैयारी कर रहा था। वह न मालूम कब से घर से गायब था और सिद्धेश्वरी को स्वयं पता नहीं था कि वह कहाँ गया है।

किंतु सच बोलने की उसकी तबीयत नहीं हुई और उसने झूठ-मूठ कहा, 'किसी लड़के के यहाँ पढ़ने गया है, आता ही होगा। दिमाग उसका बड़ा तेज़ है और उसकी तबीयत चौबीसों घंटे पढ़ने में ही लगी रहती है। हमेशा उसी की बात करता रहता है।'

रामचंद्र ने कुछ नहीं कहा। एक टुकड़ा मुँह में रखकर भरा गिलास पानी पी गया, फिर खाने में लग गया। वह काफ़ी छोटे-छोटे टुकड़े तोड़कर उन्हें धीरे-धीरे चबा रहा था।

सिद्धेश्वरी भय तथा आतंक से अपने बेटे को एकटक निहार रही थी। कुछ क्षण बीतने के बाद डरते-डरते उसने पूछा, 'वहाँ कुछ हुआ क्या?'

रामचंद्र ने अपनी बड़ी-बड़ी भावहीन आँखों से अपनी माँ को देखा, फिर नीचा सिर करके कुछ रुखाई से बोला, 'समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।'

सिद्धेश्वरी चुप रही। धूप और तेज़ हो गई थी। छोटे आँगन के ऊपर आसमान में बादल के एक-दो टुकड़े पाल की नावों की तरह तैर रहे थे। बाहर की गली से गुज़रते हुए खड़खड़िया इक्के की आवाज़ आ रही थी और खटोले पर सोए बालक की साँस का खर-खर शब्द सुनाई दे रहा था।

रामचंद्र ने अचानक चुप्पी को भंग करते हुए पूछा, 'प्रमोद खा चुका?'

सिद्धेश्वरी ने प्रमोद की ओर देखते हुए उदास स्वर में उत्तर दिया, 'हाँ, खा चुका।'

'रोया तो नहीं था?'

सिद्धेश्वरी फिर झूठ बोल गई, 'आज तो सचमुच नहीं रोया। वह बड़ा ही होशियार हो गया है। कहता था, बड़का भैया के यहाँ जाऊँगा। ऐसा लड़का...'

पर वह आगे कुछ न बोल सकी, जैसे उसके गले में कुछ अटक गया। कल प्रमोद ने रेवड़ी खाने की ज़िद पकड़ ली थी और उसके लिए डेढ़ घंटे तक रोने के बाद सोया था।

रामचंद्र ने कुछ आश्चर्य के साथ अपनी माँ की ओर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ तेज़ी से खाने लगा।

थाली में जब रोटी का केवल एक टुकड़ा शेष रह गया, तो सिद्धेश्वरी ने उठने का उपक्रम करते हुए प्रश्न किया, 'एक रोटी और लाती हूँ?'

रामचंद्र हाथ से मना करते हुए हड़बड़ाकर बोल पड़ा, 'नहीं-नहीं, ज़रा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं तो यह भी छोड़नेवाला हूँ। बस, अब नहीं।'

सिद्धेश्वरी ने ज़िद की, 'अच्छा, आधी ही सही।'

रामचंद्र बिगड़ उठा, 'अधिक खिलाकर बीमार डालने की तबीयत है क्या? तुम लोग ज़रा भी नहीं सोचते हो। बस, अपनी ज़िद! भूख रहती तो क्या ले नहीं लेता?'

सिद्धेश्वरी जहाँ की तहाँ बैठी ही रह गई। रामचंद्र ने थाली में बचे टुकड़े से हाथ खींच लिया और लोटे की ओर देखते हुए कहा, 'माँ, पानी लाओ।'

सिद्धेश्वरी लोटा लेकर पानी लेने चली गई। रामचंद्र ने कटोरे को उँगलियों से बजाया, फिर हाथ को थाल में रख दिया। एक-दो क्षण बाद रोटी के टुकड़े को धीरे-से हाथ से उठाकर आँख से निहारा और अंत में इधर-उधर देखने के बाद टुकड़े को मुँह में इस सरलता से रख लिया, जैसे वह भोजन का ग्रास न होकर पान का बीड़ा हो।

मँझला लड़का मोहन आते ही हाथ-पैर धोकर पीढ़े पर बैठ गया। वह कुछ साँवला था और उसकी आँखें छोटी थीं। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। वह अपने भाई ही की तरह दुबला-पतला था, किंतु उतना लंबा न था। वह उम्र की

अपेक्षा कहीं अधिक गंभीर और उदास दिखाई पड़ रहा था।

सिद्धेश्वरी ने उसके सामने थाली रखते हुए प्रश्न किया, 'कहाँ रह गए थे बेटा? भैया पूछ रहा था।'

मोहन ने रोटी के एक बड़े ग्रास को निगलने की कोशिश करते हुए अस्वाभाविक मोटे स्वर में जवाब दिया, 'कहीं तो नहीं गया था। यहीं पर था।'

सिद्धेश्वरी वहीं बैठकर पंखा डुलाती हुई इस तरह बोली, जैसे स्वप्न में बड़बड़ा रही हो, 'बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ़ कर रहा था। कह रहा था, मोहन बड़ा दिमागी होगा, उसकी तबीयत चौबीसों घंटे पढ़ने में ही लगी रहती है।' यह कहकर उसने अपने मँझले लड़के की ओर इस तरह देखा, जैसे उसने कोई चोरी की हो।

मोहन अपनी माँ की ओर देखकर फीकी हँसी हँस पड़ा और फिर खाने में जुट गया। वह परोसी गई दो रोटियों में से एक रोटी, कटोरे की तीन-चौथाई दाल तथा अधिकांश तरकारी साफ़ कर चुका था।

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। इन दोनों लड़कों से उसे बहुत डर लगता था। अचानक उसकी आँखें भर आईं वह दूसरी ओर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने मोहन की ओर मुँह फेरा, तो लड़का लगभग खाना समाप्त कर चुका था।

सिद्धेश्वरी ने चौंकते हुए पूछा, 'एक रोटी देती हूँ?'

मोहन ने रसोई की ओर रहस्यमय नेत्रों से देखा, फिर सुस्त स्वर में बोला, 'नहीं।'

सिद्धेश्वरी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'नहीं, बेटा, मेरी कसम, थोड़ी ही ले लो। तुम्हारे भैया ने एक रोटी ली थी।'

मोहन ने अपनी माँ को गौर से देखा, फिर धीरे-धीरे इस तरह उत्तर दिया, जैसे कोई शिक्षक अपने शिष्य को समझाता है, 'नहीं रे, बस। अव्वल तो अब भूख नहीं। फिर रोटियाँ तूने ऐसी बनाई हैं कि खाई नहीं जातीं। न मालूम कैसी लग रही हैं। खैर, अगर तू चाहती ही है, तो कटोरे में थोड़ी दाल दे दे। दाल बड़ी अच्छी बनी है।'

सिद्धेश्वरी से कुछ कहते न बना और उसने कटोरे को दाल से भर दिया।

मोहन कटोरे को मुँह से लगाकर सुड़-सुड़ पी ही रहा था कि मुंशी चंद्रिका प्रसाद जूतों को खस-खस घसीटते हुए आए और राम का नाम लेकर चौकी पर बैठ गए। सिद्धेश्वरी ने माथे पर साड़ी को कुछ नीचे खिसका लिया और मोहन दाल को एक साँस में पीकर तथा पानी के लोटे को हाथ में लेकर तेज़ी से बाहर चला गया।

दो रोटियाँ, कटोरा-भर दाल तथा चने की तली तरकारी। मुंशी चंद्रिका प्रसाद पीढ़े पर पालथी मारकर बैठे रोटी के एक-एक ग्रास को इस तरह चुभला-चबा रहे थे, जैसे बूढ़ी गाय जुगाली करती है। उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष के लगभग थी, किंतु पचास-पचपन के लगते थे। शरीर का चमड़ा झूलने लगा था, गंजी खोपड़ी आईने

की भाँति चमक रही थी। गंदी धोती के ऊपर अपेक्षाकृत कुछ साफ़ बनियान तार-तार लटक रही थी।

मुंशी जी ने कटोरे को हाथ में लेकर दाल को थोड़ा सुड़कते हुए पूछा, 'बड़का दिखाई नहीं दे रहा!'

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि उसके दिल में क्या हो गया है – जैसे कुछ काट रहा हो। पंखे को ज़रा और ज़ोर से घुमाती हुई बोली, 'अभी-अभी खाकर काम पर गया है। कह रहा था, कुछ दिनों में नौकरी लग जाएगी। हमेशा 'बाबू जी-बाबू जी' किए रहता है।' बोला, 'बाबू जी देवता के समान हैं।'

मुंशी जी के चेहरे पर कुछ चमक आई। शरमाते हुए पूछा, 'ऐं, क्या कहता था कि बाबू जी देवता के समान हैं? बड़ा पागल है।'

सिद्धेश्वरी पर जैसे नशा चढ़ गया था। उन्माद की रोगिणी की भाँति बड़बड़ाने लगी, 'पागल नहीं है, बड़ा होशियार है। उस ज़माने का कोई महात्मा है। मोहन तो उसकी बड़ी इज़्ज़त करता है। आज कह रहा था कि भैया की शहर में बड़ी इज़्ज़त होती है, पढ़ने-लिखनेवालों में बड़ा आदर होता है और बड़का तो छोटे भाइयों पर जान देता है। दुनिया में वह सब कुछ सह सकता है, पर यह नहीं देख सकता कि उसके प्रमोद को कुछ हो जाए।'

मुंशी जी दाल लगे हाथ को चाट रहे थे। उन्होंने सामने की ताक की ओर देखते हुए कुछ हँसकर कहा, 'बड़का का दिमाग तो खैर काफ़ी तेज़ है, वैसे लड़कपन में बड़ा नटखट भी था। हमेशा खेल-कूद में लगा रहता था, लेकिन यह भी बात थी कि जो सबक मैं उसे याद करने को देता था, उसे बर्राक रखता था। असल तो यह है कि तीनों लड़के काफ़ी होशियार हैं। प्रमोद को कम समझती हो?' – यह कहकर वह अचानक ज़ोर से हँस पड़े।

मुंशी जी डेढ़ रोटी खा चुकने के बाद एक ग्रास से युद्ध कर रहे थे। कुछ कठिनाई होने पर एक गिलास पानी चढ़ा गए। फिर खर-खर खाँसकर खाने लगे।

फिर चुप्पी छा गई। दूर से किसी आटे की चक्की की पुक-पुक आवाज़ सुनाई दे रही थी और पास के नीम के पेड़ पर बैठा कोई पंडूक लगातार बोल रहा था।

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। वह चाहती थी कि सभी चीज़ें ठीक से पूछ ले। सभी चीज़ें ठीक से जान ले और दुनिया की हर चीज़ पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में न जाने कैसा भय समाया हुआ था।

अब मुंशी जी इस तरह चुपचाप दुबके हुए खा रहे थे, जैसे पिछले दो दिनों से मौन व्रत धारण कर रखा हो और उसको कहीं जाकर आज शाम को तोड़नेवाले हों।

सिद्धेश्वरी से जैसे नहीं रहा गया। बोली, 'मालूम होता है, अब बारिश नहीं होगी।'

मुंशी जी ने एक क्षण के लिए इधर-उधर देखा, फिर निर्विकार स्वर में राय दी,

'मक्खियाँ बहुत हो गई हैं।'

सिद्धेश्वरी ने उत्सुकता प्रकट की, 'फूफा जी बीमार हैं, कोई समाचार नहीं आया।'

मुंशी जी ने चने के दानों की ओर इस दिलचस्पी से दृष्टिपात किया, जैसे उनसे बातचीत करनेवाले हों। फिर सूचना दी, 'गंगाशरण बाबू की लड़की की शादी तय हो गई। लड़का एम.ए. पास है।'

सिद्धेश्वरी हठात चुप हो गई। मुंशी जी भी आगे कुछ नहीं बोले। उनका खाना समाप्त हो गया था और वे थाली में बचे-खुचे दानों को बंदर की तरह बीन रहे थे।

सिद्धेश्वरी ने पूछा, 'बड़का की कसम, एक रोटी देती हूँ। अभी बहुत-सी हैं।'

मुंशी जी ने पत्नी की ओर अपराधी के समान तथा रसोई की ओर कनखी से देखा, तत्पश्चात किसी घुटे उस्ताद की भाँति बोले, 'रोटी... रहने दो, पेट काफ़ी भर चुका है। अन्न और नमकीन चीज़ों से तबीयत ऊब भी गई है। तुमने व्यर्थ में कसम धरा दी। खैर, कसम रखने के लिए ले रहा हूँ। गुड़ होगा क्या?'

सिद्धेश्वरी ने बताया कि हँडिया में थोड़ा-सा गुड़ है।

मुंशी जी ने उत्साह के साथ कहा, 'तो थोड़े गुड़ का ठंडा रस बनाओ, पीऊँगा। तुम्हारी कसम भी रह जाएगी, ज़ायका भी बदल जाएगा, साथ-ही-साथ हाज़मा भी दुरुस्त होगा। हाँ, रोटी खाते-खाते नाक में दम आ गया है।' यह कहकर वे ठहाका मारकर हँस पड़े।

मुंशी जी के निबटने के पश्चात सिद्धेश्वरी उनकी जूठी थाली लेकर चौके की ज़मीन पर बैठ गई। बटलोई की दाल को कटोरे में उँड़ेल दिया, पर वह पूरा भरा नहीं। छिपुली में थोड़ी-सी चने की तरकारी बची थी, उसे पास खींच लिया। रोटियों की थाली को भी उसने पास खींच लिया, उसमें केवल एक रोटी बची थी। मोटी, भद्दी और जली उस रोटी को वह जूठी थाली में रखने जा ही रही थी कि अचानक उसका ध्यान ओसारे में सोए प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लड़के को कुछ देर तक एकटक देखा, फिर रोटी को दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर दिया। एक टुकड़े को तो अलग रख दिया और दूसरे टुकड़े को अपनी जूठी थाली में रख लिया। तदुपरांत एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ गई। उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टपटप आँसू चूने लगे।

सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गंदी साड़ी टँगी थी, जिसमें कई पैबंद लगे हुए थे। दोनों बड़े लड़कों का कहीं पता नहीं था। बाहर की कोठरी में मुंशी जी औंधे मुँह होकर निश्चिंतता के साथ सो रहे थे, जैसे डेढ़ महीने पूर्व मकान किराया नियंत्रण विभाग की क्लर्की से उनकी छँटनी न हुई हो और शाम को उनको काम की तलाश में कहीं जाना न हो!

प्रश्न-अभ्यास

1. सिद्धेश्वरी ने अपने बड़े बेटे रामचंद्र से मँझले बेटे मोहन के बारे में झूठ क्यों बोला?
2. कहानी के सबसे जीवंत पात्र के चरित्र की दृढ़ता का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. कहानी के उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे गरीबी की विवशता झाँक रही हो।
4. 'सिद्धेश्वरी का एक दूसरे सदस्य के विषय में झूठ बोलना परिवार को जोड़ने का अनथक प्रयास था' – इस संबंध में आप अपने विचार लिखिए।
5. 'अमरकांत आम बोलचाल की ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिससे कहानी की संवेदना पूरी तरह उभरकर आ जाती है।' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
6. रामचंद्र, मोहन और मुंशी जी खाते समय रोटी न लेने के लिए बहाने करते हैं, उसमें कैसी विवशता है? स्पष्ट कीजिए।
7. मुंशी जी तथा सिद्धेश्वरी की असंबद्ध बातें कहानी से कैसे संबद्ध हैं? लिखिए।
8. 'दोपहर का भोजन' शीर्षक किन दृष्टियों से पूर्णतया सार्थक है?
9. आपके अनुसार सिद्धेश्वरी के झूठ सौ सत्यों से भारी कैसे हैं? अपने शब्दों में उत्तर दीजिए।
10. आशय स्पष्ट कीजिए –
    (क) वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा भर पानी लेकर गट-गट चढ़ा गई।
    (ख) यह कहकर उसने अपने मँझले लड़के की ओर इस तरह देखा, जैसे उसने कोई चोरी की हो।
    (ग) मुंशी जी ने चने के दानों की ओर इस दिलचस्पी से दृष्टिपात किया, जैसे उनसे बातचीत करनेवाले हों।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आस-पास मौजूद समान परिस्थितियों वाले किसी विवश व्यक्ति अथवा विवशतापूर्ण घटना का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. 'भूख और गरीबी में प्राय: धैर्य और संयम नहीं टिक पाते हैं।' इसके आलोक में सिद्धेश्वरी के चरित्र पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

व्यग्रता – व्याकुलता, घबराया हुआ
बर्राक – याद रखना, चमकता हुआ
पंडूक – कबूतर की तरह का एक प्रसिद्ध पक्षी
कनखी – आँख के कोने से

ओसारे	–	बरामदा
निर्विकार	–	जिसमें कोई विकार या परिवर्तन न होता हो
छिपुली	–	खाने का छोटा बर्तन
अलगनी	–	कपड़े टाँगने के लिए बाँधी गई रस्सी
नाक में दम आना	–	परेशान होना
जी में जी आना	–	चैन आ जाना